दैनिक भास्कर

Date: 23-07-26

अमेरिका से ट्रेड अवरोध बड़ा संकट सिद्ध हो रहा है

संपादकीय

समस्या ईयू ब्रिटेन, जापान या अन्य देशों से एफटीए से दूर नहीं होगी, भले ही जनता को दिखाने के लिए इसे बड़ी उपलब्धि कहा जाए। 2025 तक के पिछले पांच वर्षों में उक्त दो देशों और एक ट्रेडिंग ब्लॉक से भारत का औसत सालाना ट्रेड सरप्लस (खरीद से ज्यादा बिक्री) कुल 12 अरब डॉलर रहा है, जबकि अकेले यूएस से 42 अरब डॉलर का । यानी 1:3.5 का अंतर फिर यूएस को जो सामान भारत भेजता रहा है, वह भारत के लोगों को रोजगार देने में अहम भूमिका रखता है। इनमें खास हैं बेसिक फार्मास्यूटिकल्स, असेंबल्ड इलेक्ट्रॉनिक गुड्स, श्रम-कौशल आधारित वस्तुएं आदि । इन देशों से हुए एफटीए में क्या हम श्रम-सघन वस्तुओं को बेचने की स्थिति में हैं? क्या जापान हमारी बनाई वस्तुओं का खरीदार हो सकेगा? अभी तक ईयू को भारत रूस से मिले क्रूड को शोधित कर बेचता था और ट्रेड सरप्लस का यह बड़ा हिस्सा रहा। लेकिन इसके उलट अभी तक जहां ईयू वियतनाम का सामान शून्य टैरिफ पर लेता था, वहीं भारत को 9 से 10% टैरिफ देना पड़ता था। लिहाजा एफटीए इस मायने में लाभकारी है। लेकिन दूसरी ओर भारत न चाहते हुए भी चीन से बेतहाशा माल खरीद रहा है, जबकि चीन भारत से उसका दसवां हिस्सा भी नहीं लेता। नतीजतन, पहली बार भारत-चीन व्यापार घाटा 100 अरब डॉलर के पार जा चुका है। सोचना यह होगा कि यूएस से फिर से ट्रेड कैसे शुरू हो और उससे ज्यादा यह कि चीन से खरीद कम करके स्वयं भारत में कैसे उत्पादन किया जाए।

Date: 23-07-26

कहीं 'पंजाबिस्तान' भर ना रह जाए पाकिस्तान...

मिन्हाज मर्चेंट, (लेखक, प्रकाशक और सम्पादक)

पाकिस्तान का 44 प्रतिशत भूभाग बलूचिस्तान में आता है। इस इलाके में करीब 1.4 करोड़ की छितराई हुई आबादी बसती है, जो पाकिस्तान की कुल 25 करोड़ से अधिक आबादी का छोटा-सा ही हिस्सा है। मार्च 1948 में- जब से पाकिस्तान ने बलूचिस्तान पर कब्जा किया- तब ही से यह सूबा पाकिस्तान के खिलाफ आजादी की लड़ाई लड़ता आ रहा है। 1947 में बंटवारे के समय बलूचिस्तान 'कलात' नाम की एक स्वतंत्र रियासत थी, जिसके शासक मीर

अहमद यार खान हुआ करते थे। पाकिस्तानी हुकूमत ने कलात पर पाकिस्तान में विलय का दबाव डाला था। हालांकि, उसके बाद से बीते सात दशकों से बलूच नेतृत्व और पाकिस्तानी हुकूमत के बीच के रिश्ते उथल-पुथल भरे ही रहे हैं।

पाकिस्तान से आजादी की मांग को लेकर बलूचिस्तान लिबरेशन आर्मी (बीएलए) ने बीते कुछ हफ्तों में पाकिस्तानी सेना पर हमले तेज कर दिए हैं। 5 जुलाई को बलूचिस्तान लिबरेशन आर्मी के लड़ाकों ने बलूचिस्तान के जियारत जिले में मंगी बांध की सुरक्षा कर रहे नौ पुलिसकर्मियों को मार दिया था। 8 जुलाई को बीएलए उग्रवादियों ने पाकिस्तानी सेना के वाहन पर घात लगा कर हमला किया, जिसमें 11 सैनिक मारे गए। इसी बीच, बीएलए उग्रवादियों ने मस्तुंग जिले में भी पाकिस्तान सेना के काफिले को बम से उड़ा दिया, जिसमें अनुमानतः 45 सैनिकों की मौत हो गई।

एक प्रतीकात्मक कदम के रूप में बलूच नेताओं ने पाकिस्तान से स्वतंत्रता की घोषणा करते हुए अपने देश का नाम 'रिपब्लिक ऑफ बलूचिस्तान' रख दिया है। हालांकि, इन दावों को अब तक किसी भी देश ने मान्यता नहीं दी है। यहां यह याद रखना जरूरी है कि चीन और अमेरिका, दोनों की ही दिलचस्पी शांतिपूर्ण बलूचिस्तान में है। चीन अपने बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) के तहत चाइना-पाकिस्तान इकनॉमिक कॉरिडोर (सीपैक) बनाकर बलूचिस्तान में बुनियादी ढांचे का निर्माण कर रहा है। वहीं, अमेरिका बलूचिस्तान के महत्वपूर्ण खनिजों, सोने और तांबे की खदानों तथा तेल सम्पदा तक पहुंच बनाना चाहता है।

भारत भी इस पूरे मसले पर नजर बनाए है। स्थानीय बलूच नेता मीर यार बलूच ने रिपब्लिक ऑफ बलूचिस्तान का राष्ट्रगान जारी किया है और भारत से नई दिल्ली में बलूचिस्तान का दूतावास खोलने का अनुरोध किया है। हालांकि, नई दिल्ली ने फिलहाल तो इस पर सावधानीपूर्ण प्रतिक्रिया ही दी है, क्योंकि बलूचिस्तान की राजधानी क्वेटा के आसपास सुरक्षा हालात अभी अस्थिर बने हुए हैं।

पाकिस्तान ने 1948 में कब्जे के बाद से ही बलूचिस्तान की उपेक्षा की है। इसीलिए आज भी यह पाकिस्तान के सबसे गरीब प्रांतों में से एक है और वैश्विक आतंकवाद के लिए उपजाऊ भूमि बना हुआ है। अमेरिका में 9/11 के आतंकी हमलों के बाद अफगान तालिबान के नेता मुल्ला मोहम्मद उमर ने अफगानिस्तान में अमेरिकी-नेतृत्व वाली नाटो सेनाओं के खिलाफ विद्रोह का नेतृत्व किया था। मुल्ला उमर 2001 में पाकिस्तान भाग गया था। पाकिस्तानी हुकूमत ने उसे क्वेटा में ही छिपाकर रखा था। यानी पाकिस्तानी फौज एक ओर तो नाटो का साथ देने का ढोंग कर रही थी, वहीं दूसरी ओर वह तालिबान की मददगार भी बनी रही था। ऐसा दोहरा खेल खेलना पाकिस्तानी लीडरान की प्रवृत्ति रही है। उन्होंने लगभग एक दशक तक ओसामा बिन लादेन को भी एबटाबाद में छिपाकर रखा था, जब तक कि 2011 में अमेरिकी नेवी सील्स ने उसे ढूंढकर मार नहीं गिराया।

पश्चिमी देशों के लिए पाकिस्तान की उपयोगिता के कारण बलूचिस्तान के मुक्ति आंदोलन को भले ही व्यापक अंतरराष्ट्रीय समर्थन न मिल पाए, लेकिन इसे पाकिस्तान के जातीय आधार पर बिखरने की शुरुआत माना जा

सकता है। उधर पीओके में भी असंतोष बढ़ रहा है। खैबर पख्तूनख्वा में उथल-पुथल है। बलूचिस्तान से सीमा साझा करने वाले सिंध में भी पाकिस्तानी फौज और हुकूमत में पंजाबियों के दबदबे के खिलाफ लंबे समय से प्रदर्शन चल रहे हैं।

11.2 करोड़ (44%) आबादी वाले पाकिस्तानी पंजाबी इस मुल्क का सबसे समृद्ध और प्रभावशाली जातीय समूह हैं। लेकिन विडम्बना यह है कि जहां पंजाबी पाकिस्तानी 44 प्रतिशत हैं, वहीं पंजाब देश के केवल 26 प्रतिशत भूभाग पर फैला हुआ है। उधर, बलूच आबादी महज 6 प्रतिशत है, लेकिन बलूचिस्तान में पाकिस्तान का 44 प्रतिशत भूभाग आता है।

यदि बलूचिस्तान, खैबर पख्तूनख्वा और सिंध भी बांग्लादेश की तरह पाकिस्तान से अलग हो जाएं तो वह ‘पंजाबिस्तान’ नाम का एक छोटा-सा राज्य भर रह जाएगा। अतीत में यूरोप के यूगोस्लाविया में भी इसी तरह का विघटन हुआ था। लंबे जातीय संघर्षों के बाद वहां से सात स्वतंत्र राष्ट्र उभरे थे- स्लोवेनिया, क्रोएशिया, सर्बिया, मोंटेनेग्रो, बोस्निया एंड हर्जेगोविना, उत्तर मैसेडोनिया और कोसोवो।

हालांकि, दोनों स्थितियों में एक स्पष्ट अंतर भी दिखता है। शीत युद्ध की समाप्ति और सोवियत संघ के विघटन के बाद अमेरिकी नेतृत्व वाले नाटो देशों ने एक भू-राजनीतिक रणनीति के तहत जानबूझकर यूगोस्लाविया को विखंडित किया था। लेकिन पाकिस्तान के मामले में अमेरिका की रुचि देश को एकजुट बनाए रखने में है। 1947 से अमेरिका और ब्रिटेन पाकिस्तान का उपयोग अपने भू-राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले किसी देश के तौर पर करते रहे हैं। पाकिस्तान के सैन्य तानाशाहों से निपटना सरल है और उन्हें घूस देना भी उतना ही आसान है। सीआईए और आईएसआई अंदरखाने मिलकर ही काम करती हैं।

देखें तो पाकिस्तान ऐतिहासिक रूप से अमेरिका का एक प्रमुख गैर-नाटो सहयोगी रहा है। अमेरिका 1989 से ही पाकिस्तान द्वारा भारतीय नागरिकों पर कराए गए आतंकी हमलों को अनदेखा करता रहा है। लेकिन क्या वह खनिज सम्पदा से भरपूर बलूचिस्तान में सुलग रही क्रांति को भी अनदेखा कर सकता है?

दैनिक जागरण

Date: 23-07-26

राजनीति का औजार बनी शिक्षा

शंकर शरण, (लेखक राजनीतिशास्त्र के प्रोफेसर एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

दिल्ली में जंतर-मंतर पर शिक्षा मंत्री के इस्तीफे और नीट समेत केंद्रीय परीक्षाओं में गड़बड़ी ठीक करने की मांग करते हुए बैठे समूह कॉकरोच जनता पार्टी यानी सीजेपी के साथ लद्दाख के सामाजिक कार्यकर्ता सोनम वांगचुक ने जब अपनी भूख हड़ताल शुरू की तो उनके इस बयान से यही लगा कि वे कुछ आगे का सोच रहे हैं कि शिक्षा मंत्री का इस्तीफा तो महज शुरुआत है। फिर उनसे खास तरह के एक्टिविस्ट और दलीय नेता भी मिलने आने लगे। सोनम वांगचुक ने जंतर-मंतर पर चल रहे अभियान को राजनीतिक रंग देना शुरू किया। उन्हें अस्पताल ले जाए जाने के बाद सोमवार को उस समूह ने संसद की ओर मार्च किया। उसमें शामिल लोगों द्वारा पथराव में असंख्य पुलिस वाले घायल हो गए। यह सब संदेह पैदा करता है कि शिक्षा मंत्री के इस्तीफे की मांग के बहाने एक राजनीतिक आंदोलन चलाने की जुगत हो रही है यानी सत्ता परिवर्तन की कोशिश। अपने आप में राजनीतिक आंदोलन करने या सत्ता बदलना चाहने में कुछ गलत नहीं है, किंतु शिक्षा क्षेत्र और छात्रों को इसका औजार बनाने में दोहरी गलती है। इससे शिक्षा जैसा गंभीर विषय दलीय राजनीति की भेंट चढ़ जाता है। जिस विषय को राजनीति से दूर रखकर सुधारना, संभालना आवश्यक है, वह न केवल उपेक्षित होकर यथावत रह जाता है, बल्कि और बिगड़ने की दिशा में चला जाता है।

वर्ष 1974 से ही अनेक बार देखा जा चुका है कि छात्रों, युवाओं को दलीय राजनीति के लिए इस्तेमाल किया गया। यदि सोनम वांगचुक और उनके साथियों का ऐसा इरादा नहीं था तो उन्हें शैक्षिक मुद्दे पर केंद्रित रहकर पूरा ध्यान उसके विभिन्न पहलुओं पर देना चाहिए था। उसे कड़ाई से दलीय राजनीति से अलग रखते हुए, शैक्षिक क्षेत्र के विशेषज्ञों से विचार करके बेहतरी की कोई रूपरेखा तैयार करनी चाहिए थी। इससे नीति-निर्माताओं को सहायता भी मिलती। इसके बदले केवल शिक्षा मंत्री का इस्तीफा चाहना कई सवाल खड़े करता है। किसी सच्चे प्रयत्न की सार्थकता तभी होगी, जब शैक्षिक संस्थानों की पवित्रता, शैक्षिक सामग्री की गुणवत्ता, प्रतिभाओं को समुचित प्रोत्साहन, योग्य शिक्षकों को स्थान देना तथा गड़बड़ी के सभी बिंदुओं को दुरुस्त करने पर ध्यान दिया जाए। इसके बदले एक इस्तीफे की जिद, तरह-तरह के लोगों का जमावड़ा, ऊल-जुलूल उत्तेजक बातें और राजनीतिक आंदोलन चलाने का खुला-छिपा संकेत, यह सब जाने-अनजाने भोले छात्रों-युवाओं को इस्तेमाल करने की मंशा दिखाता है। इसमें शिक्षा की भलाई नहीं है। इस पर गुरुदेव टैगोर ने गांधीजी तक को भी टोका था।

यदि शैक्षिक क्षेत्र को दुरुस्त करना एवं गुणवत्तापूर्ण बनाना है तो उसकी पहली शर्त उसे दलीय राजनीति से दूर रखना है, अन्यथा दलीय राजनीति और सत्ता परिवर्तन की चाह पूरा ध्यान दूसरी चीजों पर लगाएगी। मूल मुद्दा हाशिए पर चला जाएगा। यह पहले भी कई बार, कई स्थानों पर देश-विदेश में हो चुका है। यहां जेपी आंदोलन और अन्ना आंदोलन, दोनों का इतिहास यह साफ-साफ दिखाता है। दोनों ने सामाजिक मुद्दे उठाए, जिसमें बड़ी संख्या में छात्र और युवाओं को जोड़ा गया, जिनमें आदर्श की भावना अधिक होती है, किंतु दोनों बार केवल सत्ता की लालसा रखने वाले नेताओं ने आंदोलन का इस्तेमाल किया। जेपी और अन्ना की पीठ पर चढ़कर मतलबी नेता आगे बढ़ गए। खुद जेपी और अन्ना हजारे भी जल्द ही पीछे छूट गए। उनसे भी पहले वह मुद्दा छूटकर कहीं किनारे हो गया। सत्ता पर नजर रखने वाले तत्वों ने उनका उपयोग कर अपनी मनचाही मुराद पूरी की। जबकि मूल मुद्दा जहां का तहां रह गया।

अन्ना हजारे ने 15 साल पहले इसी जंतर-मंतर पर भ्रष्टाचार के विरुद्ध जो आंदोलन शुरू किया था, उसका क्या हुआ? क्या आज कोई कह सकता है कि तबसे अब तक भ्रष्टाचार में कुछ अंतर पड़ा? अन्ना आंदोलन इसलिए निष्फल साबित हुआ, क्योंकि किसी मुद्दे की विशिष्टता को गंभीरता से परखने, उसके समाधान की यथार्थ रूपरेखा बनाने आदि की चिंता के बदले केवल प्रचार, हल्ला, आवेश आदि पर ध्यान रहा, जिसका सधे हुए नेताओं ने इस्तेमाल कर लिया। मुद्दा और अन्ना, दोनों पृष्ठभूमि में चले गए। क्या वांगचुक और उनके साथी इस निकट इतिहास से अनजान हैं? इसका उत्तर तो वही जानें, किंतु यह निश्चित है कि किसी भी सामाजिक-सांस्कृतिक विषय को दलबंदी से जोड़ना उसे बिगाड़ देना ही है। शिक्षा के साथ ऐसा होना और दुर्भाग्यपूर्ण होगा, क्योंकि इसमें हजारों भोले छात्रों के सरल विश्वास को चोट लगती है। फिर लगभग एक पूरी पीढ़ी निराशा में डूब जाती है, जब तक कि फिर अगली पीढ़ी आशा से खड़ी हो।

शिक्षा मंत्री के इस्तीफे को 'आरंभ' बताकर राजनीतिक दलबंदी का संकेत देने के अलावा और कुछ नहीं। यदि सीजेपी को राजनीतिक दलबंदी करनी है तो शिक्षा को इसका औजार न बनाएं। यदि उसे सचमुच शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण और कदाचार रहित बनाने की चिंता है तो वैसे भड़काऊ समर्थकों को 'नमस्कार' कर लेना चाहिए, जो किसी न किसी बहाने केवल वर्तमान सरकार को अपदस्थ करना चाहते हैं। जंतर-मंतर पर दूर-दूर से आए आदर्शवादी छात्रों, युवाओं के साथ ऐसे लोग भी थे, जो उत्तेजना फैलाने और पुलिस-प्रशासन से जानबूझकर टकराव पर आमादा थे। उत्तेजना और टकराव से प्रायः मुद्दा बदल जाने की आशंका रहती है। कुछ आंदोलनकारियों की चाह भी यह रहती है। वे केवल हेडलाइन बनाना और सरकार को डांवाडोल करना चाहते हैं। ऐसा उद्देश्य शिक्षा और छात्रों के हित से अलग है।

वस्तुतः वांगचुक और उनके साथियों ही नहीं, सभी जिम्मेदार नेताओं को यह समझना चाहिए कि शिक्षा का क्षेत्र गंभीर विषय है, जिससे सभी देशवासी निरपवाद रूप से प्रभावित होते हैं। सत्ताधारी और विपक्ष, दोनों के विवेकशील नेताओं को शिक्षा को राष्ट्रीय विषय मान कर ही अपना व्यवहार रखना चाहिए, ताकि यह संकीर्ण स्वार्थों की चपेट से बचा रहे। अन्यथा यह देश के एक सबसे मूल्यवान स्रोत को ही दूषित करने जैसा है। इसके दुष्परिणाम सभी के लिए हानिकारक होंगे।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 23-07-26

निवेश के माहौल में सुधार की दरकार

संपादकीय

नीति आयोग ने पिछले सप्ताह अपना पहला निवेशअनुकूलता सूचकांक (आईएफआई) 2026 जारी किया। इसमें बुनियादी ढांचे, कारोबारी माहौल, संसाधन, सरकारी नीति, नियामक सुगमता, संस्थागत वातावरण, वित्तीय स्वास्थ्य और पर्यावरणीय लचीलापन सहित आठ स्तंभों में 84 संकेतकों के व्यापक ढांचे के माध्यम से राज्य स्तरीय निवेश पारिस्थितिकी तंत्र की समग्र गुणवत्ता का मूल्यांकन किया गया है। गुजरात, महाराष्ट्र और तमिलनाडु बड़े राज्यों में शीर्ष तीन प्रदर्शन करने वाले राज्य बनकर उभरे। गुजरात ने 100 में से 56.6 अंक प्राप्त किए, उसके बाद महाराष्ट्र (53.7) और तमिलनाडु (53.3) का स्थान रहा। कोई भी राज्य आठों स्तंभों में लगातार अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाया। कुछ राज्यों का बुनियादी ढांचे, नियामक सुगमता या पर्यावरणीय लचीलापन जैसे विशिष्ट क्षेत्रों में अच्छा प्रदर्शन है, लेकिन कमजोर संस्थागत क्षमता या व्यापारिक सुविधा अक्सर इन लाभों को कम कर देती है। यहां तक कि सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने वाले राज्यों ने भी आधे से थोड़ा अधिक अंक ही प्राप्त किए हैं। इससे पता चलता है कि भारत के अग्रणी निवेश स्थलों को भी अभी काफी सुधार करना बाकी है।

रिपोर्ट में कहा गया है कि शीर्ष पांच राज्य महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात दिल्ली और तमिलनाडु मिलकर भारत के कुल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) का लगभग 85 फीसदी आकर्षित करते हैं, जबकि पूर्वोत्तर राज्यों को मिलाकर एक फीसदी से भी कम निवेश प्राप्त होता है, जो क्षेत्रीय असमानता को उजागर करता है। रिपोर्ट का समय महत्त्वपूर्ण है। विश्व बैंक के अनुसार, भारत को वर्ष 2047 तक उच्च आय वाले देश का दर्जा हासिल करने के लिए अगले दो दशकों में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की औसत वास्तविक वृद्धि दर 7.8 फीसदी बनाए रखनी होगी। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में निवेश की केंद्रीय भूमिका रहेगी। 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद से भारत की वृद्धि में पूंजी निर्माण का योगदान आधे से अधिक रहा है। हालांकि 2024-25 में निवेश जीडीपी के फीसदी के रूप में लगभग 30 फीसदी तक पहुंच गया, जो पिछले दशक के औसत से थोड़ा अधिक है, फिर भी यह 2000 के दशक के उच्च वृद्धि वाले वर्षों के दौरान हासिल किए गए स्तरों से काफी कम है।

भारत ने पिछले कुछ वर्षों में राजमार्गों, बंदरगाहों, हवाई अड्डों, डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना और औद्योगिक गलियारों के विस्तार में उल्लेखनीय प्रगति की है, जिससे आवागमन और कनेक्टिविटी में सुधार हुआ है। फिर भी, निवेशक भूमि अधिग्रहण, पर्यावरण संबंधी मंजूरी, यूटिलिटी कनेक्शन, परियोजना अनुमोदन और उच्च मूल्य वाले क्षेत्रों में कुशल श्रमिकों की उपलब्धता में देरी को प्रमुख बाधाओं के रूप में बताते हैं जिन राज्यों में डिजिटल एकल खिड़की मंजूरी प्रणाली, निवेशकों की शिकायतों के निवारण के लिए विशेष तंत्र और सहज औद्योगिक अवसंरचना मौजूद है, वहां निवेशकों का विश्वास अधिक है। वे उच्च पूंजी प्रतिबद्धताओं और परियोजनाओं के तेजी से निष्पादन की भी बात करते हैं। इससे पता चलता है कि संस्थागत जवाबदेही औद्योगिक क्षमता जितनी ही महत्त्वपूर्ण है।

निवेश संबंधी निर्णय अंततः राज्य स्तर पर लिए जाते हैं, इसलिए निजी निवेश को बढ़ावा देने, विनिर्माण को मजबूत करने, निर्यात बढ़ाने और गुणवत्तापूर्ण रोजगार सृजित करने के लिए निरंतर मानकीकरण और शासन में साक्ष्यों पर आधारित सुधार अत्यंत महत्त्वपूर्ण होंगे। केंद्र सरकार को तकनीकी सहायता, क्षमता निर्माण और

सर्वोत्तम तरीकों के प्रसार के माध्यम से पिछड़े राज्यों का सहयोग करना चाहिए। सुधारों के परिणामों की संस्थागत रूप से नियमित निगरानी करना, विभागों के बीच समन्वय को मजबूत करना, नियामक पूर्वानुमान में सुधार करना और समयबद्ध कार्यान्वयन सुनिश्चित करना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। निवेश के लिए वैश्विक प्रतिस्पर्धा बढ़ने के साथ, राज्यों को शासन की गुणवत्ता, नीतिगत स्थिरता और व्यापार करने में सुगमता के आधार पर प्रतिस्पर्धा करनी होगी। सहकारी और प्रतिस्पर्धी संघवाद द्वारा समर्थित एक अधिक संतुलित और लचीला निवेश पारिस्थितिकी तंत्र, आर्थिक अवसरों को कुछ अग्रणी राज्यों से आगे फैलाने में मदद करेगा और भारत को सतत दीर्घकालिक विकास हासिल करने के लिए एक मजबूत मार्ग पर बढ़ाएगा।

Date: 23-07-26

गरीबों के लिए औपचारिक डिजिटल बचत योजना

एमएस श्रीराम, (लेखक भारतीय प्रबंध संस्थान, बेंगलूरु में प्राध्यापक हैं। इस विषय पर सलाह देने के लिए वह मिशा शर्मा, प्रिया गणेशन और दिलीप अस्बे के आभारी हैं)

नई पहल या नए सुधार कार्यक्रमों में बचत एक ऐसा पहलू है जिस पर खास ध्यान देने की आवश्यकता है। लंबे समय से नीति निर्माताओं और बाजार, दोनों ने गरीब तबके को कर्ज के बोझ से दबे एक ऐसे समूह के तौर पर देखा है जिन्हें साहूकारों के चंगुल से बाहर निकालने की जरूरत है। नीतिगत चर्चा संस्थागत ऋण यानी प्राथमिकता-क्षेत्र लक्ष्य, पुनर्वित्त और सहकारी समितियों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों जैसी विशेष संस्थाओं आदि पर केंद्रित रही हैं।

आपूर्ति पक्ष के मोर्चे पर प्रयासों के बावजूद गरीब महिलाओं के लिए 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में ही सूक्ष्म ऋण के जरिये ऋण की उपलब्धता संभव हो पाई। हम इस बात का जिक्र कर चुके हैं कि लघु एवं मझोले उद्यमों में अभी काफी कुछ करने की गुंजाइश बची है मगर इस पर किसी और दिन चर्चा कर लेंगे।

पिछले दो दशकों के दौरान हमने धन प्रेषण (रेमिटेंस) में दिलचस्प प्रगति देखी है जिनसे समावेश वाले ग्राहकों को लाभ हुआ है। यह नीतिगत प्राथमिकता के बजाय प्रौद्योगिकी के कारण संभव हो पाया है। कोर बैंकिंग समाधानों (सीबीएस) का विस्तार, बैंकों के बीच काम करने वाले स्वचालित टेलर मशीन, इंटरनेट और मोबाइल सेवा का प्रसार, भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम (एनपीसीआई) की स्थापना आदि की मदद से भुगतान और प्रेषण के लिए एक पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण हुआ। गरीब लोगों को इस संरचना का परोक्ष रूप से लाभ मिला। उपयोगकर्ता शुल्क न लेने की नीति से लेन-देने के माध्यम के रूप में यूनिफाइड पेमेंट इंटरफेस (यूपीआई) की

लोकप्रियता बढ़ती गई। हालांकि, यह अभी भी सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों और महिलाओं के बीच पूरी तरह नहीं पहुंच पाया है मगर धन प्रेषण आसान, सरल और निर्बाध बनाने में इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

बचत के मामले में हमारे पास ऐसी कोई ऐसी उपलब्धि नहीं दिखाई दे रही है। यह सोच बेबुनियाद है कि गरीब बचत नहीं कर सकते। हमें यह समझना चाहिए कि गरीब उधार लेते हैं और ब्याज सहित किश्तें चुकाते हैं। अगर हम बचत और ऋण को नकदी प्रवाह की निरंतरता के रूप में देखें तो ऋण और बचत के बीच का अंतर न के बराबर है। स्टुअर्ट रदरफोर्ड ने अपनी प्रतिष्ठित पुस्तक 'द पुअर ऐंड देयर मनी' में इसे 'सेविंग अप (किसी खरीदारी के लिए रकम जोड़ना) और सेविंग डाउन (बचाई रकम खर्च करना या इससे कर्ज चुकाना आदि) कहा है। इस मिथक के अलावा कुछ दूसरी पाबंदियां भी हैं। बचत योजनाओं में चूक या कदाचार का जोखिम कमज़ोर ग्राहक को उठाना पड़ता है, इसलिए नियामक बचत उत्पादों के साथ प्रयोगों में किसी भी प्रकार की ढील देने को लेकर सतर्क रहता है।

बार-बार होने वाले छोटे-छोटे लेनदेन की अधिक लागत का बोझ कम ब्याज दर के जरिये गरीब ग्राहकों पर नहीं डाला जा सकता। ऋण देने वाले व्यक्ति या कोई संस्था ऋण चुकाने का निर्धारित कार्यक्रम तय कर नकद प्रवाह नियंत्रित करते हैं। बचत की कोई ऐसी योजना बनाना, जिसमें बदलाव की गुंजाइश हो और जिसमें गरीबों के हाथों आने वाली रकम में उतार-चढ़ाव का भी ध्यान रखा जाए, एक मुश्किल काम है। बैंकरों को ऐसी योजनाएं पसंद नहीं आतीं क्योंकि वे उनके नकदी प्रबंधन प्रणाली में फिट नहीं बैठतीं। लिहाजा पुरानी संस्थाएं बचत के मामले में कोई नया प्रयोग नहीं करतीं।

बचत का लालच देकर गरीबों के साथ बार-बार होने वाली धोखाधड़ी से दो बातें पता चलती हैं। पहली बात, गरीबों में बचत करने की इच्छा है और दूसरी बात यह कि सोच और नए विचारों की कोई कमी नहीं है। मगर यह सब चुपचाप होता है। पोंजी योजना, चिट फंड और सहारा जैसी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के उदाहरण से साफ है कि गरीब लोगों में बचत करने का माद्दा है। इस क्षेत्र में किए गए दूसरे नए प्रयोग अक्सर नियमों के दायरे से बचकर किए जाते हैं। एक समय ओडिशा और तमिलनाडु में 'क्षेत्रीय ग्रामीण वित्तीय सेवाओं' ने गरीबों के लिए मनी-मार्केट म्युचुअल फंड पेश किए थे। इसके पीछे सोच यह थी कि ये फंड लिक्विड (आसानी से नकद में बदले जा सकने वाले) और लचीले थे और इनसे अच्छा रिटर्न मिलता था। ये एक तरह से बचत खाते की तरह काम करते थे। हालांकि, ये काफी हद तक सुरक्षित थे मगर इनमें बाजार से जुड़ा जोखिम था और कोई बीमा सुरक्षा भी नहीं थी इसलिए आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों के बीच इसकी पेशकश नहीं की जानी चाहिए थी।

लघु भुगतान के लिए तकनीक तो आ गई है मगर विनियमित क्षेत्र में बचत के लिए नए विचार का इंतजार है। मगर यह मुश्किल काम कौन करेगा?

आइए, यूपीआई को फिर टटोलते हैं। भुगतान के क्षेत्र में सभी नवाचार बैंकिंग तंत्र से बाहर हुए। पेटीएम, फोनपे, भारतपे और भीम जैसी पहल ने सूरत पूरी तरह बदल दी। बैंकिंग प्रणाली ने इंटरफेस दिया और इन भुगतान

माध्यमों को अपने साथ जोड़ा। डिजिटल उधारी में भी सभी नवाचार बैंकिंग तंत्र के बाहर हो रहे हैं, जिनमें वित्त-तकनीक खंड की कंपनियां आगे हैं। बैंक सह-उधारी (को-लेंडिंग) या एनबीएफसी को ऋण देकर मदद कर रहे हैं जो सीधे तौर पर ऋण देती हैं।

बचत का मामला अलग है। नियामकीय पाबंदियों की वजह से यह सुविधा केवल बैंकों को ही मिलती है। बैंक अधिकारियों से उम्मीद की जाती है कि वे स्थिरता बनाए रखें। लिहाजा, नियामक का बैंकरों से नवाचार करने के प्रति उत्साहित होने की उम्मीद करना बहुत बड़ी बात होगी।

गरीब न केवल नकदी और अनौपचारिक जमा के रूप में बचत करते हैं बल्कि अलग-अलग परिसंपत्ति श्रेणियों में भी रकम लगाते हैं। बकरी पालन, घर के पिछवाड़े में मुर्गी पालन, सोना, चांदी और बर्तन (जिन्हें गिरवी रखा जा सके) इनके उदाहरण हैं। वित्तीय प्रणाली के लिए ऐसे वित्तीय योजनाएं पेश कर नकदी, रिटर्न, लचीलापन और सुरक्षा देना मुमकिन है जो गरीबों की ज़रूरतों को पूरा करती हों।

पहले यह तर्क दिया जा सकता था कि ऐसी योजनाएं बनाना और उन्हें शुरू करना महंगा होता है। अब ऐसा नहीं है। हर परिवार के पास प्रधानमंत्री जन धन योजना (पीएमजेडीवाई) खाते होने और प्रत्यक्ष लाभ अंतरण के माध्यम से रकम आने के साथ बैंक ऐसी नई योजनाएं बना सकते हैं जो तकनीक और ऐसे खाते शुरू करने में किए गए निवेश उचित ठहराते हों। पीएमजेडीवाई खाते मुख्य खाते की तरह काम कर सकते हैं जिन्हें आधार बनाकर कई तरह की बचत योजनाएं बनाई जा सकती हैं।

क्या महिलाएं इनमें शिरकत करेंगी? यह एक बड़ी चुनौती होगी क्योंकि एक स्मार्टफोन आम तौर पर परिवार के कई सदस्य इस्तेमाल करते हैं और महिलाओं को अपने वित्त के प्रबंधन के लिए स्वतंत्रता और गोपनीयता की जरूरत होती है। महिलाओं के लिए उनकी पसंद का स्मार्टफोन खरीदने के लिए बचत करने वाला उत्पाद पहला लक्ष्य हो सकता है।

क्या बैंकों से नवाचार की उम्मीद करना उचित है? नहीं, जब तक नियामक कुछ डिजिटल-ओनली बैंकों को लाइसेंस देने के लिए लीक से हटकर न सोचे। पुराने बैंकों पर पहले ही बहुत काम का बोझ है और उनका तकनीक पर ध्यान शायद ग्राहक सेवा के लिए आर्टिफिशल इंटेलिजेंस (एआई) वाले कॉल सेंटर और साइबर सुरक्षा में निवेश करने पर हो सकता है।

लीक से हटकर सोचने के लिए एनपीसीआई और रिजर्व बैंक (आरबीआई) इनोवेशन हब इसमें कारगर भूमिका निभा सकते हैं। इन दोनों की ही बात नियामक सुनता है और बैंकिंग तंत्र पर उनका अच्छा-खासा असर है। क्या वे व्हाइट-लेबल बचत उत्पाद पर काम करने को तैयार हैं? जैसा भीम के मामले में हुआ था क्या उसी तरह एनपीसीआई बैंकों के साथ एक इंटरफेस या बैकग्राउंड इंजन के तौर पर काम करेगा? व्हाइट लेबल उत्पाद वह

उत्पाद होता है जिसे कोई बड़ा उत्पादक खुदरा विक्रेता को बेचने के लिए बनाता है और फिर खुदरा विक्रेता उस पर अपना लोगो और ब्रांड लगाकर उसे अपने उत्पाद के रूप में बेचता है।

इस क्षेत्र में तकनीक आधारित नवाचार की सख्त जरूरत है। अगर बैंक उधार देने के साथ-साथ उधार लेने वालों की संपत्ति को भी अपने रिकॉर्ड में शामिल कर सकें तो ग्राहकों से मिलने वाली बचत से लोन के बोझ से जुड़ा तनाव कम हो जाएगा। मगर सवाल यह है कि कोई इस ओर ध्यान दे भी रहा है?

जनसत्ता

Date: 23-07-26

सुरक्षा की खातिर

संपादकीय

सिक्किम के नामची जिले में बीते सोमवार को भूस्खलन के कारण एक सुरंग के ढह जाने से कई लोगों की मौत हो जाने की घटना ने पर्यावरण संरक्षण और सुरक्षा को लेकर गंभीर सवाल खड़े कर दिए हैं। पहाड़ों की पारिस्थितिकी की अनदेखी कर विकास कितना नुकसानदेह हो सकता है, यह अब कोई छिपी बात नहीं है। उत्तराखंड और तेलंगाना में भी ऐसे हादसे हो चुके हैं, लेकिन ऐसा लगता है कि उनसे कोई सबक नहीं लिया गया। यह जानते हुए कि हिमालय क्षेत्र में भूस्खलन एक बड़ी चुनौती है, इसके बावजूद अगर सुरक्षा मानकों का पूरी तरह पालन न किया जाए, तो इसे लापरवाही नहीं तो और क्या कहा जाएगा। सवाल है कि जब बरसात के मौसम में सुरंग का निर्माण कार्य किया जा रहा था, तो वहां आपात स्थिति के लिए पहले से सुरक्षा उपाय करने पर ध्यान क्यों नहीं दिया गया ? इस हादसे में जिन श्रमिकों की जान चली गई, उसके लिए जिम्मेदार कौन है ? क्या इसके लिए परियोजना का काम संभाले संबंधित उच्चाधिकारियों की जवाबदेही तय की जाएगी ?

गौरतलब है कि नामची जिले में नेशनल हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर कारपोरेशन की तीस्ता - छह जल विद्युत परियोजना के लिए सुरंग बनाई जा रही है, जो भूस्खलन के कारण अचानक ढह गई। हादसे के वक्त वहां परियोजना अधिकारी सहित पच्चीस श्रमिक मौजूद थे, जिनमें से बीस की मौत हो जाने की पुष्टि की गई है। भू-वैज्ञानिकों के मुताबिक, पहाड़ी क्षेत्रों में लगातार निर्माण कार्यों और पेड़ों की अंधाधुंध कटाई के कारण मिट्टी एवं चट्टानों की पकड़ ढीली पड़ रही है। ऐसे में बारिश के दिनों में हर समय भूस्खलन का जोखिम बना रहता है। पिछले कई वर्षों से उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर और सिक्किम में कई सुरंगों का निर्माण किया गया है और कुछ का कार्य प्रगति पर है। सवाल है कि सुरंग बनाने से पहले पर्यावरण से जुड़े खतरों का पूर्व में स्टीक आकलन क्यों नहीं किया जाता ? अगर सुरक्षा मानकों का सख्ती से पालन किया जाए, तो बड़ी दुर्घटनाएं टाली जा सकती हैं। समय आ

गया है कि पर्यावरण के साथ संतुलन बना कर विकास कार्यों की योजनाएं बनाई जाएं, ताकि पहाड़ों के पारिस्थितिकी तंत्र और मनुष्य दोनों की रक्षा की जा सके।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 23-07-26

परमाणु प्रसार

संपादकीय

पश्चिम एशिया में जारी घातक युद्ध के बीच वहां हो रहा एक परमाणु समझौता बहुत व्यापक महत्व रखता है। अगर अचानक कोई बदलाव न हुआ, तो अमेरिका और सऊदी अरब के बीच असैन्य परमाणु समझौता लागू हो जाएगा। सऊदी अरब वर्षों से परमाणु शक्ति बनने के लिए लालायित है। उसका सबसे निकटतम सहयोगी अमेरिका भी इजरायल के मोह में यह नहीं चाहता था कि रणनीतिक रूप से काफी संवेदनशील सऊदी अरब परमाणु शक्ति अर्जित कर ले। ध्यान रहे, यह समझौता परमाणु बम बनाने के लिए नहीं, परमाणु ऊर्जा के लिए हो रहा है। भारत सहित करीब 26 देशों के साथ अमेरिका समझौता कर चुका है। यह नागरिक परमाणु समझौता ऐसा तरीका है, जो विश्व स्तर पर शांतिपूर्ण परमाणु ऊर्जा पर सहयोग की अनुमति देता है। अमेरिका अब सऊदी अरब में परमाणु ऊर्जा संयंत्रों का निर्माण, परमाणु ईंधन आपूर्ति, रिएक्टर प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, परमाणु सुरक्षा मानक, वैज्ञानिक-इंजीनियर प्रशिक्षण और रेडियोधर्मी कचरा प्रबंधन के लिए काम करेगा। सवाल पूछा जा सकता है कि सऊदी अरब के पास तेल-ऊर्जा की कोई कमी नहीं है, तो वह परमाणु ऊर्जा के लिए क्यों लालायित है?

गौर कीजिए, दुनिया में परमाणु ऊर्जा का अपना आकर्षण है और हर देश इस ऊर्जा का लाभ लेने के लिए लालायित है। दुनिया की परमाणु महाशक्तियों ने लंबे समय तक यह सुनिश्चित किया है कि उनकी वैज्ञानिक तरक्की दूसरे देशों के पास न पहुंच पाए। फिर भी, अब एक ऐसा दौर आ गया है, जब बड़े देश परस्पर स्वार्थ की वजह से परमाणु समझौते करने लगे हैं। कुछ समझौते खुले रूप से हुए हैं, जबकि अनेक समझौते गोपनीय हैं। नतीजतन, दुनिया में करीब 31 देश परमाणु ऊर्जा पैदा करते हैं, जबकि करीब नौ देशों के पास परमाणु बम हैं। एक दौर था, जब दुनिया में परमाणु विरोधी माहौल था। कई देश स्वेच्छा से परमाणु शक्ति बनने से इनकार कर रहे थे। अब वक्त बदला है। छोटे देशों को भी पता चल गया है कि परमाणु ऊर्जा होने से सामरिक और रणनीतिक ताकत बढ़ती है। क्या सऊदी अरब और मजबूत होने जा रहा है? क्या इससे पश्चिम एशिया में स्थिरता और युद्ध-विराम को बल मिलेगा? क्या इससे परमाणु शक्ति बनने के लिए लालायित ईरान में नाराजगी नहीं फैलेगी? यह सवाल पश्चिम एशिया में उठेगा कि किसी देश को परमाणु संपन्न करना और किसी देश को वंचित रखने की रणनीति कितनी तार्किक या जायज है?

दरअसल, सऊदी अरब के साथ खड़े होना अमेरिका की मजबूरी है। इधर के वर्षों में सऊदी अरब से रूस और चीन की निकटता लगातार बढ़ी है। परमाणु मोर्चे पर अगर सऊदी की मदद अमेरिका नहीं करेगा, तो रूस या चीन मदद के लिए आगे आ जाएंगे। दूसरी ओर, हमारे लिए यह गौर करने की बात है, पाकिस्तान ने सऊदी अरब के साथ सितंबर 2025 में एक रणनीतिक रक्षा समझौता किया है, जिसके तहत सऊदी अरब परमाणु प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर सकता है। अत: भारत के लिए तुलनात्मक रूप से यही अच्छा है कि अमेरिका सऊदी अरब के सहयोग में खड़ा हो। आगामी 30 वर्ष के लिए हो रहे इस खास समझौते से परे आशंकाएं भी बड़ी हैं, जिन पर जरूर गौर करना चाहिए। अगर भविष्य में ईरान ने परमाणु बम विकसित कर लिए, तब सऊदी अरब को रोकना मुश्किल हो जाएगा। इसके अलावा, यह समझौता इजरायल को कतई अच्छा नहीं लगा होगा। ऐसे में, देखने वाली बात होगी कि अमेरिका इस समझौते को किस मुकाम पर पहुंचाता है।

Date: 23-07-26

खेती-किसानी से नौजवानों को जोड़े रखने की जरूरत

विद्या महांबारे, (प्रोफेसर, अर्थशास्त्र, जीएलआईएम)

भारत के नीति-निर्माताओं ने हाल ही में एक पुरानी बात दोहराई है- खेती-बाड़ी से युवा आबादी को बाहर किया जाए। आर्थिक नजरिये से यह सही है, खुशहाली का पारंपरिक रास्ता यही है कि देश की कामकाजी आबादी (वर्क फोर्स) खेती से निकलकर मैन्युफैक्चरिंग और फिर सेवा क्षेत्र में जाए। लेकिन युवाओं के मामले में यह बदलाव काफी हद तक हो चुका है।

साल 2025 में भारत में खेती करने वाली आबादी की औसत उम्र 40 साल थी। पिछले दो दशकों में इसमें पांच साल की बढ़ोतरी हुई है। कुछ राज्यों में तो खेती करने वाली आबादी और भी ज्यादा उम्र की है। इसके उलट, सेवा क्षेत्र में काम करने वालों की औसत उम्र दो दशक पहले 35 साल थी, जो अब बस एक ज्यादा 36 साल है। यह जानकारी 'पीरियोडिक लेबर फोर्स सर्वे' के डाटा पर आधारित है। भारत में खेती, खनन और उससे जुड़े कामों में लगे 20-29 साल के युवाओं की भागीदारी 2004-05 से 2025 के बीच 35.4 प्रतिशत से घटकर 18.3 प्रतिशत हो गई। मुश्किल से 13 प्रतिशत युवा ही खेती और दूसरे प्राथमिक सेक्टर में काम करते हैं। 30 साल से ज्यादा उम्र के खेतिहरों की तुलना में युवा खेतिहर दोगुनी रफ्तार से खेती छोड़ रहे हैं। यह स्वाभाविक प्रक्रिया है, क्योंकि ज्यादातर युवा पढ़े-लिखे हैं और वे उद्योग व सेवा क्षेत्र में काम करना चाहते हैं।

हमें खेतों में और ज्यादा नौजवानों की जरूरत नहीं है, लेकिन जो लोग अभी भी खेती कर रहे हैं, उन्हें इस कार्य से बाहर करने की भी जरूरत नहीं है। जरूरत है, तो उनकी कमाई बढ़ाने और खेती को फायदेमंद बनाने की। भारत में 30 साल से ज्यादा उम्र के लोगों में से भी, 2025 में केवल 21 प्रतिशत आबादी खेती और खनन के काम में थी, जबकि दो दशक पहले यह आंकड़ा 37 प्रतिशत था। पिछले 20 वर्षों में, पशुपालन (जिसमें डेयरी भी शामिल है और जिसमें ज्यादातर महिलाएं हैं) में लगे 30 साल से ज्यादा उम्र की आबादी की हिस्सेदारी तीन प्रतिशत से बढ़कर नौ प्रतिशत हो गई है, यानी 30 साल से ज्यादा उम्र के 6.5 करोड़ लोग पशुपालन में लगे हैं।

युवाओं में बेरोजगारी दर दोगुनी बढ़कर छह प्रतिशत हो गई है और जो लोग न काम कर रहे हैं और न ही तलाश कर रहे हैं, उनकी आबादी 27 प्रतिशत बनी हुई है। खेतिहर आबादी को खेती छोड़ने के लिए मजबूर करने से दूसरे प्राथमिक कामों और नौकरी चाहने वालों की कतार में और लोग जुड़ जाएंगे, जबकि खेती में अधिक उम्रदराज लोग ही रह बचेंगे। कुछ राज्यों में खेती में लगे युवाओं की संख्या जरूरत से ज्यादा हो सकती है। जैसे, मध्य प्रदेश, जहां लगभग हर चार में से एक युवा खेती में है। उनके लिए ग्रामीण भारत के उन हिस्सों में, खासकर दक्षिण भारत में जाना सुगम बनाना होगा, जहां कृषि-कार्य में अच्छी कमाई है।

संक्षेप में, देश के भीतर ही खेतिहर मजदूरों को दूसरी जगहों पर काम पर लगाना जरूरी है, न कि उनकी संख्या कम करना। हम खेती को फायदेमंद कैसे बनाएं? इसके उपाय सबको पता हैं। पहला, मशीनीकरण, सिंचाई की सुविधा और चकबंदी कर बड़े भूखंड बनाना, ताकि फसल की पैदावार और मजदूरों की उत्पादन क्षमता बढ़ सके। साथ ही, हमें खेती से पैदा होने वाली चीजों की मांग बढ़ानी होगी। इसके लिए, कृषि-प्रसंस्करण उद्योग का विस्तार और उसमें वैल्यू-एडिशन को बढ़ावा देना होगा। कोल्ड स्टोरेज चेन बनानी होगी और खेती से जुड़े निर्यात को स्थिर बनाना होगा। अगर ऐसा नहीं हुआ, तो कृषि-उत्पादों की कीमतें ऊपर-नीचे होती रहेंगी।

हमें सुधारों को समग्र रूप से देखने की भी जरूरत है। नीति-निर्माता कहते हैं कि भविष्य प्लंबिंग और बिजली के काम जैसे ट्रेड स्किल्स सिखाने में है। इसी तरह, हमारी हाउसिंग पॉलिसी छोटे ग्रामीण प्लॉट पर घर बनाने के लिए सब्सिडी देती है, जिससे खेतों की चकबंदी में बाधा आती है और नतीजतन, खेती की उत्पादकता पर बुरा असर पड़ता है। भारत को अब खेती से दूर हटने की नहीं, बल्कि इस सेक्टर को देखने का नजरिया बदलने की जरूरत है। इसे एक ऐसे उद्योग के तौर पर देखा जाना चाहिए, जिसमें निवेश करना फायदेमंद हो।